

**इलाहाबाद उच्च न्यायालय****लखनऊ****आपराधिक अपील संख्या - 2377 वर्ष 2007****[Neutral Citation No. 2026:AHC-LKO:19898]**

राजेंद्र कुमार यादव और 2 अन्य

.....अपीलकर्ता(गण)

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

.....प्रतिवादी(गण)

अपीलकर्ता(गण) के अधिवक्ता : परेश मिश्रा, दिनेश सिंह राणा, गोपाल नारायण

मिश्रा, राजीव कुमार बाजपेयी

प्रतिवादी(गण) के अधिवक्ता : शासकीय अधिवक्ता

न्यायालय संख्या - 28**अस्वीकरण:**

अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

माननीय न्यायमूर्ति प्रमोद कुमार श्रीवास्तव

1. लखनऊ के मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट की दिनांक 18.03.2026 की रिपोर्ट के अनुसार, राकेश (अपीलार्थी संख्या 2) की मृत्यु 12.02.2025 को हो गई है। इस संबंध में अरविंद यादव, अभिषेक कुमार, उपनिरीक्षक अभय प्रताप सिंह के बयान तथा मृतक-अपीलार्थी संख्या 2 का मृत्यु प्रमाण पत्र भी संलग्न है।
2. चूँकि अपीलार्थी संख्या-2 राकेश का निधन हो गया है, अतः वर्तमान आपराधिक अपील अपीलार्थी संख्या-2 राकेश के संबंध में समाप्त मानी जाएगी।
3. शेष अपीलार्थी संख्या-1 राजेंद्र कुमार यादव और अपीलार्थी संख्या-3 फूल चंद जीवित हैं।
4. आज न्यायालय में अधिवक्ता श्री संजय कुमार सिंह द्वारा अपीलार्थी संख्या-1 और 3 की ओर से वकालतनामा/अभिभाषक पत्र प्रस्तुत किया गया, जिसे अभिलेख पर ले लिया गया है।
5. अपीलार्थी संख्या 1 और 3 के विद्वान अधिवक्ता श्री संजय कुमार सिंह तथा राज्य के विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना, और साथ ही अभिलेख का अवलोकन किया।

अस्वीकरण:

अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

6. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 374 (2) के तहत यह अपील लखनऊ स्थित अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश/एफटीसी(फास्ट ट्रैक कोर्ट) न्यायालय संख्या 5 द्वारा दिनांक 15.09.2007 को पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध प्रस्तुत की गई है। यह आदेश सत्र विचारण संख्या 117 वर्ष 2007 में पारित किया गया था, जो मुकदमा अपराध संख्या 211ए/2004 (धारा 323/504/506 भारतीय दण्ड संहिता के अंतर्गत पुलिस थाना चिनहट, जिला लखनऊ) से उत्पन्न हुआ था; जिसके द्वारा अपीलकर्तागण को धारा 323 भारतीय दण्ड संहिता के तहत दोषी ठहराया गया और एक वर्ष के कठोर कारावास से दण्डादेशित किया गया, जबकि उन्हें धारा 504 और 506 भारतीय दण्ड संहिता के अंतर्गत लगाए गए आरोपों से दोषमुक्त कर दिया गया।
7. संक्षेप में अभियोजन पक्ष की कहानी यह है कि 12.07.2004 को सायं काल लगभग 06:30 बजे जब शिकायतकर्ता राम पाल यादव (निवासी ग्राम लोखरीहा, थाना चिनहट, जिला लखनऊ) का बेटा शिवराज भीसें चराकर लौटा, और जब उसकी भीसें स्कूल के आँगन में चरने लगीं, तो आरोपी राजेंद्र और उसकी पत्नी ने शिकायतकर्ता के बेटे अर्थात् शिवराज को पीटना प्रारम्भ कर दिया। जब शिवराज भागकर घर के अंदर चला गया, तो अभियुक्त राजेंद्र अपने सह-अभियुक्तगण फूलचंद और राकेश के साथ शिकायतकर्ता के घर में घुस गया और शिकायतकर्ता के भाई मोलाहे और बेटे को लाठी-डंडों से पीटना प्रारम्भ कर दिया। शोर सुनकर गाँव वाले जिनमें चंदा, बिंदा और अन्य लोग शामिल थे घटनास्थल पर पहुँचे और उन्हें बचाया; तब अभियुक्तगण गाली-गलौज करते हुए और जान से मारने की धमकी देकर वहाँ से भाग गए।

अस्वीकरण:

अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



8. शिकायतकर्ता ने 12 जुलाई 2004 को रात 11:15 बजे पुलिस थाना चिनहट, लखनऊ में इस संबंध में एक लिखित रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिसके आधार पर भारतीय दंड संहिता की धारा 452, 323, 504 और 506 के अंतर्गत अभियुक्तगण राजेंद्र यादव, राकेश, फूलचंद और राकेश यादव के विरुद्ध मुकदमा अपराध संख्या 211A/2004 के अंतर्गत प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई।
9. जांच के दौरान, जांच/अन्वेषण अधिकारी ने घटनास्थल का मुआयना किया, एक नक्शा नजरी तैयार किया और शिकायतकर्ता तथा गवाहों के बयान दर्ज किए। घायल व्यक्तियों का चिकित्सीय परीक्षण बलरामपुर अस्पताल, लखनऊ में हुआ। परीक्षण पूर्ण होने के पश्चात और अभियुक्तों के विरुद्ध पर्याप्त साक्ष्य एकत्रित करने के पश्चात, भारतीय दण्ड संहिता की धारा 323, 504 और 506 के तहत आरोप पत्र दाखिल किया गया। अभियुक्तों ने आरोपों से इनकार किया और अभियोग का विचारण करने की मांग की।
10. प्रकरण को सिद्ध करने हेतु अभियोजन पक्ष ने राम पाल (अभियोजन साक्षी-1/शिकायतकर्ता), मोलाहे प्रसाद (अभियोजन साक्षी-2), शिवराज (अभियोजन साक्षी-3), डॉ. अखिलेश चंद्र (अभियोजन साक्षी-4) और SI राजेंद्र कुमार शुक्ला (अभियोजन साक्षी-5) के माध्यम से प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य प्रस्तुत किए हैं।
11. दस्तावेजी साक्ष्य के रूप में अभियोजन पक्ष ने लिखित रिपोर्ट (प्रदर्श क-1), राम पाल की चोट रिपोर्ट (प्रदर्श क-2), मोलाहे प्रसाद की चोट रिपोर्ट (प्रदर्श क-3), घटनास्थल का नक्शा

अस्वीकरण:

अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

(प्रदर्श क-4), आरोप-पत्र (प्रदर्श क-5), प्रथम सूचना रिपोर्ट (प्रदर्श क-6) और प्रकरण पंजीकरण दस्तावेज़ (प्रदर्श क-7) प्रस्तुत किए हैं।

12. अभियोजन पक्ष के गवाहों के बयान पूरे होने के पश्चात अभियुक्तों के बयान दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अंतर्गत दर्ज किए गए; जिसमें उन्होंने अपने विरुद्ध प्रस्तुत साक्ष्यों और अन्य दोषारोपक परिस्थितियों से इनकार किया, किंतु उनकी ओर से बचाव पक्ष का कोई भी साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया।
13. दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं की दलीलें सुनने और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री की जांच करने के पश्चात विद्वान विचारण न्यायालय ने पाया कि अभियोजन पक्ष ने अभियुक्त अपीलकर्ताओं के विरुद्ध प्रकरण सिद्ध कर दिया है। विचारण न्यायालय ने अभियुक्त अपीलकर्ताओं, अर्थात् राजेंद्र कुमार यादव, राकेश और फूल चंद को भारतीय दण्ड संहिता की धारा 323 के तहत दोषी ठहराया और 1 वर्ष के कठोर कारावास से दण्डादेशित किया, जबकि उन्हें भारतीय दण्ड संहिता की धारा 504 और 506 के तहत लगाए गए आरोपों से आरोपमुक्त कर दिया गया।
14. दोषसिद्धि और सजा के आदेश से व्यथित और असंतुष्ट होकर, यह आपराधिक अपील इस आधार पर दाखिल की गई है कि माननीय विचारण न्यायालय द्वारा साक्ष्यों पर न्यायिक विवेक से विचार नहीं किया गया और अभियोजन पक्ष ने ऐसे गवाह प्रस्तुत किए जिनका प्रकरण में निजी हित था, परन्तु माननीय विचारण न्यायालय द्वारा बिना किसी न्यायिक विवेक का प्रयोग किए उन पर विश्वास कर लिया गया। साक्ष्य आपसी दुश्मनी

अस्वीकरण:

अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

पर आधारित थे और कोई भी स्वतंत्र साक्षी प्रस्तुत नहीं किया गया, इन तथ्यों के बावजूद विचारण न्यायालय ने गलती से अभियुक्त-अपीलकर्ताओं को दोषी ठहरा दिया। इसलिए यह आक्षेपित आदेश अवैध विकृत और रद्द किए जाने योग्य है।

15. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि यद्यपि उन्होंने दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध अपील प्रस्तुत की है, तथापि इस स्तर पर वे मात्र दंडादेश के संबंध में ही अपील पर बल देना चाहते हैं और अपील के गुण-दोष के आधार पर उस पर बल नहीं देना चाहते।

16. अपीलकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि उत्तर प्रदेश राज्य का अपना स्थानीय परिवीक्षा विधि है, अर्थात् उत्तर प्रदेश प्रथम अपराधी परिवीक्षा अधिनियम 1938। उन्होंने आगे यह भी कहा कि अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 (केंद्रीय अधिनियम) (एट्स्मिनपश्चात् '1958 का एक्ट' के रूप में संदर्भित) भी उत्तर प्रदेश राज्य में लागू होता है, जैसा कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **मोहम्मद हाशिम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य; (2017) 2 एसएससी 198** के प्रकरण में निर्णय दिया था। इसलिए अपीलकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि इन दोनों में से किसी भी अधिनियम के अंतर्गत लाभ देना न्यायालय के विवेक पर निर्भर करता है।

17. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने यह निवेदन किया कि यह घटना 22 वर्ष पूर्व घटित हुई थी और अपीलकर्ताओं के विरुद्ध कोई अन्य आपराधिक पूर्ववृत्त नहीं है। उन्होंने आगे यह भी निवेदन किया कि अपीलकर्ता प्रथम बार अपराध करने वाले हैं और उन्हें पूर्व

अस्वीकरण:

अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

में किसी भी प्रकरण में दोषसिद्ध नहीं किया गया है। अतः उन्होंने यह निवेदन किया कि यह न्यायालय अभियुक्त-अपीलकर्ताओं को वर्ष 1958 के अधिनियम की धारा 4 का लाभ प्रदान करने पर विचार कर सकता है।

18. दूसरी ओर विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने अपील का विरोध किया है और प्रस्तुत किया है कि विचारण न्यायालय द्वारा कोई भी बड़ी अनियमितता या न्यायविस्वृद्धी कार्य नहीं किया गया है, और अभिलेख पर उपस्थित साक्ष्य को देखते हुए अभियुक्त-अपीलकर्तागण को उचित प्रकार से दोषी ठहराया गया है।
19. विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने आगे कथन किया कि 1958 के अधिनियम की धारा 4 का लाभ अभियुक्त-अपीलकर्तागण को 1958 के अधिनियम की धारा 4 में निर्दिष्ट कुछ शर्तों के अधीन दिया जा सकता है।
20. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता के तर्क पर विचार करने से पूर्व, 'अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958' की धारा 3 और 4 को उद्धृत करना उपयोगी होगा:

“3. कतिपय अपराधियों को भर्त्सना के पश्चात छोड़ देने की न्यायालय की शक्ति - "जब कोई व्यक्ति भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 379 या धारा 380 या धारा 381 या धारा 404 या धारा 420 के अधीन दण्डनीय कोई अपराध अथवा भारतीय दंड संहिता या किसी अन्य विधि के अधीन दो वर्ष से

अस्वीकरण:

अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

अनधिक के लिए कारावास या जुर्माने अथवा दोनों से दण्डनीय कोई अपराध करने का दोषी पाया जाता है, और उसके विरुद्ध कोई पूर्व दोषसिद्धि साबित नहीं होती है, और जिस न्यायालय द्वारा वह व्यक्ति दोषी पाया जाता है, उसकी यह राय है कि प्रकरण की परिस्थितियों को जिसके अंतर्गत अपराध की प्रकृति और अपराधी का चरित्र भी है ध्यान में रखते हुए ऐसा करना समीचीन है तब तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी भी बात के होते हुए भी वह न्यायालय उसे दण्डित करने या उसे धारा 4 के अधीन सदाचरण की परिवीक्षा पर छोड़ने के बजाय उसे सम्यक भर्त्सना के पश्चात छोड़ सकेगा।

स्पष्टीकरण— इस धारा के प्रयोजनों के लिए किसी व्यक्ति के विरुद्ध पूर्व दोषसिद्धि के अंतर्गत इस धारा या धारा 4 के अधीन उसके विरुद्ध किया गया कोई पूर्व आदेश भी है।

4. कतिपय अपराधियों को सदाचरण की परिवीक्षा पर छोड़ने की न्यायालय की शक्ति - (1) जब कोई व्यक्ति ऐसा कोई अपराध करने का दोषी पाया जाता है जो मृत्यु या आजीवन कारावास से दण्डित नहीं है, और जिस न्यायालय ने उस व्यक्ति को दोषी पाया है उसकी यह राय है कि मामले की परिस्थितियों को जिसमें अंतर्गत अपराध की प्रकृति और अपराधी का चरित्र भी है, ध्यान

अस्वीकरण:

अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

में रखते हुए सदाचरण की परिवीक्षा पर छोड़ देना समीचीन हो, तब तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी वह न्यायालय उसे तुरंत दण्डित करने के बजाय, निदेश दे सकेगा कि उसे, प्रतिभूओं के सहित या उनके बिना, उसके द्वारा ऐसा बंधपत्र देने पर छोड़ दिया जाए की वह तीन वर्ष से अनधिक की ऐसी कालावधि के दौरान, जैसी न्यायालय निर्दिष्ट करे, आहूत किये जाने पर उपस्थित होगा और दण्डादेश प्राप्त करेगा और इस बीच वह परिशांति कायम रखेगा और सदाचारी रहेगा:

परन्तु कि न्यायालय किसी अपराधी के ऐसे छोड़ दिए जाने का निदेश तब तक नहीं देगा जब तक उसका समाधान नहीं हो जाता कि अपराधी उसके प्रतिभू का, यदि कोई हो, नियत निवास स्थान या उस स्थान में नियमित उपजीविका है, जिस पर वह न्यायालय अधिकारिता का प्रयोग करता है, अथवा जिसमें अपराधी के उस कालावधि के दौरान रहने की संभाव्यता है जिसके लिए वह बंधपत्र निष्पादित करता है।

21. 1958 के अधिनियम की धारा 4 वहाँ लागू होती है, जहाँ कोई व्यक्ति किसी ऐसे अपराध का दोषी पाया जाता है, जिसके लिए सजा न तो आजीवन कारावास है और न ही मृत्युदंड। न्यायालय ऐसे आरोपी को धारा में उल्लिखित अनुसार एक बंधपत्र प्रस्तुत करने पर सदाचरण की परिवीक्षा पर छोड़ सकता है। इस धारा के प्रावधानों को लागू करते समय

अस्वीकरण:

अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

न्यायालय को अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करने से पूर्व मामले की परिस्थितियों अपराधी के चरित्र और अपराध की प्रकृति पर भी विचार करना आवश्यक होता है।

22. जहां तक अपीलकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा 1958 के अधिनियम की धारा 4 के लाभ प्रदान करने की प्रार्थना का संबंध है, तो इस संदर्भ में विधिक स्थिति तथा सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि पर चर्चा करना आवश्यक है।
23. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **रतन लाल बनाम पंजाब राज्य एआईआर 1965 एससी 444** के प्रकरण में अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 के उद्देश्य और लक्ष्य पर चर्चा करते हुए, प्रस्तर संख्या 4 में निम्नलिखित टिप्पणी की है:

“4. यह अधिनियम दंडशास्त्र के क्षेत्र में सुधार की आधुनिक उदारवादी प्रवृत्ति की प्रगति में एक मील का पत्थर है। यह इस सिद्धांत को मान्यता दिए जाने का ही परिणाम है कि आपराधिक विधि का उद्देश्य अपराधी को दंडित करने के बजाय उसका सुधार करना अधिक है। मोटे तौर पर कहें तो यह अधिनियम 21 वर्ष से कम आयु के अपराधियों और उससे अधिक आयु के अपराधियों के बीच तथा उन अपराधियों के बीच जो मृत्युदंड या आजीवन कारावास से दंडनीय अपराध के दोषी हैं और उन अपराधियों के बीच जो किसी कम गंभीर अपराध के दोषी हैं, अंतर करता है। जहाँ 21 वर्ष से अधिक आयु के अपराधियों के मामले में न्यायालय

अस्वीकरण:

अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु हैं और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

को यह पूर्ण विवेकाधिकार दिया गया है कि वह अधिनियम के उपयुक्त प्रावधान में निर्धारित शर्तों के अधीन रहते हुए उन्हें चेतावनी देकर या सदाचरण की परीक्षा पर रिहा कर दे, वहीं 21 वर्ष से कम आयु के अपराधियों के मामले में न्यायालय को यह निर्देश जारी किया गया है कि वह उन्हें कारावास का दंड न दे, जब तक कि वह इस बात से संतुष्ट न हो जाए कि मामले की परिस्थितियों जिसमें अपराध की प्रकृति और अपराधियों का चरित्र भी शामिल है को देखते हुए उनके साथ अधिनियम की धारा 3 और 4 के अधीन व्यवहार करना उचित नहीं है।”

24. इसके अतिरिक्त माननीय उच्चतम न्यायालय ने **वेद प्रकाश बनाम हरियाणा राज्य (1981)**

1 एसएससी 447 : एआईआर 1981 एससी 643 के मामले में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 360 जिसे अपराधियों की परीक्षा अधिनियम, 1958 की धारा 4 के साथ पढ़ा जाए के अनुपालन के संबंध में बेंच/न्यायपीठ और बार के कर्तव्यों पर चर्चा करते हुए निम्नलिखित टिप्पणी की:

“जिस अपराध के लिए सजा सुनाई गई है, वह ऐसा है जिस पर धारा 360, या कम से कम अपराधी परीक्षा अधिनियम, 1958 लागू होता है। हमारे समक्ष उपलब्ध सामग्री अपूर्ण है, क्योंकि विचारण न्यायालय ने दण्डादेश पारित करने के अपने दायित्वों के निर्वहन में औपचारिकता मात्र बरती है। हम इस बात पर बल देना

अस्वीकरण:

अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

चाहते हैं कि किसी अभियुक्त को सजा सुनाना, विवेक का प्रयोग करने एक संवेदनशील कार्य है, यह कोई सामान्य या यांत्रिक प्रक्रिया नहीं है जो मात्र किसी अंदाज़े या अटकल पर आधारित हो। विचारण न्यायालय को ऐसी सामग्री एकत्रित करनी चाहिए थी जो उस मामले के परिस्थिति के अनुसार उचित दण्ड देने में सहायता करती। अपराध करने वाले की सामाजिक पृष्ठभूमि और व्यक्तिगत कारक अत्यंत प्रासंगिक होते हैं, यद्यपि व्यवहार में आपराधिक न्यायालयों ने अपराधी के सामाजिक परिवेश अथवा व्यक्तिगत परिस्थितियों पर शायद ही कभी ध्यान दिया है। भले ही धारा 360 दण्ड प्रक्रिया संहिता लागू न होती हो, फिर भी दण्डादेश पारित करने वाले न्यायालय का यह दायित्व है कि वह इतनी सक्रियता दिखाए कि ऐसे तथ्य एकत्रित कर सके जिनका दण्ड पर प्रभाव पड़ता हो और जिनका उद्देश्य अपराधी का सुधार करना हो। इस मामले में ऐसी सामग्री न होने की वजह से हमें अधिवक्ताओं से भी ज़्यादा मदद नहीं मिल पाई है। सत्य तो यह है कि अधिवक्ता भी उन विधिक प्रावधानों पर ज़्यादा ध्यान नहीं देते, जिनका उद्देश्य अपराधी के साथ ऐसा व्यवहार करना है कि वह अपराध मुक्त व्यक्ति हो जाये। हम इस बात पर इसलिए बल दे रहे हैं, क्योंकि दण्डादेश में नरमी से जुड़े विधियों को लघु अधिनियम/माईनर एक्ट मान लिया गया है, अतः, इसका महत्व नगण्य है। यह पूर्ण रूप से गलत दृष्टीकोण है, और यदि बार मदद न करें, तो भी बेंच/पीठ को दंडादेश देने के उस मानवीय उद्देश्य को पूर्ण

अस्वीकरण:

अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

करना चाहिए जो अपराधी परिवीक्षा अधिनियम जैसे विधियों में छिपा हुआ है।”

25. यह भी ध्यान देने योग्य है कि इस माननीय न्यायालय ने **सुभाष चंद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2015 लॉ सूट (आल)1343** के मामले में परिवीक्षा विधि को लागू करने और उचित मामलों में अभियुक्तों को इस लाभकारी विधि का लाभ देने की आवश्यकता पर बल दिया है। इस न्यायालय ने सभी विचारण न्यायालय और अपीलीय न्यायालयों को निम्नलिखित निर्देश जारी किए:

“ऐसा प्रतीत होता है कि उपर्युक्त लाभकारी विधान को नजरअंदाज कर दिया गया है और यहाँ तक कि न्यायाधीश भी विधि के इस प्रावधान को व्यावहारिक रूप से भूल चुके हैं। अतः मामले को समाप्त करने से पूर्व इस न्यायालय को प्रतीत होता है कि यदि अवर न्यायालयों और अपीलीय न्यायालयों के लिए सावधानी का एक शब्द नहीं लिखा गया, तो मैं अपने कर्तव्यों के निर्वहन में विफल रहूँगा। इस न्यायालय के रजिस्ट्रार जनरल/महा निबन्धक को निर्देश दिया जाता है कि वे इस निर्णय की एक प्रति उत्तर प्रदेश के सभी जिला न्यायाधीशों को वितरित करें, वे बदले में यह सुनिश्चित करेंगे कि इस आदेश की प्रति उनके अधीन कार्यरत सभी न्यायिक अधिकारियों के मध्य वितरित हो और इस निर्णय का सख्ती से अनुपालन सुनिश्चित किया जाए। राज्य के जिला

अस्वीकरण:

अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

न्यायाधीशों को यह भी निर्देश दिया जाता है कि वे ऐसे मामलों की सुनवाई करने वाली सभी न्यायालयों अर्थात् अवर न्यायालयों और अपीलीय न्यायालयों से प्रत्येक माह आख्या मंगाएँ और यह बताएँ कि कितने प्रकरणों में अभियुक्त को उपर्युक्त प्रावधानों का लाभ प्रदान किया गया है। जिला न्यायाधीशों को यह भी निर्देश दिया जाता है कि वे प्रत्येक मासिक बैठक में ऐसे मामलों की व्यक्तिगत रूप से निगरानी करें। संबंधित जिला न्यायाधीश रजिस्ट्रार जनरल/महा निबंधक को एक मासिक विवरण भेजेंगे, जिसमें यह बताया जाएगा कि कितने मामलों में अवर न्यायालयों/अपीलीय न्यायालयों ने अभियुक्त को उपर्युक्त लाभकारी विधान का लाभ प्रदान किया है। इस आदेश की एक प्रति तत्काल अनुपालन हेतु रजिस्ट्रार जनरल/महा निबंधक के समक्ष रखी जाए।

26. इसके अतिरिक्त माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **महाराष्ट्र राज्य बनाम जगमोहन सिंह कुलदीप सिंह आनंद (2004) 7 एससीसी 659** के मामले में अपीलकर्तागण को अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 का लाभ प्रदान किया है, और निम्नानुसार टिप्पणी की है:—

अभियुक्त की ओर से उपसंजात हुए विद्वान अधिवक्ता ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि यह दुर्घटना वर्ष 1990 की है। दोनों पक्ष शिक्षित हैं और पड़ोसी भी हैं। इसलिए विद्वान अधिवक्ता ने यह प्रार्थना की कि अभियुक्त को अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958

अस्वीकरण:

अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

का लाभ दिया जाए। अभियुक्त की ओर से की गई यह प्रार्थना उचित प्रतीत होती है। यह दुर्घटना दस वर्ष से भी अधिक पुरानी है। यह विवाद पड़ोसियों के मध्य नाली के अधिकार को लेकर हुए एक मामूली से मुद्दे पर था। यह दुर्घटना गुस्से के आवेश में हुई थी। सभी पक्ष शिक्षित हैं और आपस में दूर के रिश्तेदार भी हैं। यह दुर्घटना ऐसी नहीं है जिसके लिए अभियुक्त को कारावास की सज़ा भुगतने का निर्देश दिया जाए। हमारी राय में यह एक ऐसा उपयुक्त मामला है जिसमें अभियुक्त को सदाचरण के लिए एक वर्ष का बंधपत्र भरने का निर्देश देकर परिवीक्षा पर रिहा कर दिया जाना चाहिए।

27. अब सीताराम पासवान बनाम बिहार राज्य एआईआर 2005 एससी 3534 के मामले में अभियुक्तगण/अपीलकर्तागण को परिवीक्षा अधिनियम का लाभ देने की वांछनीयता के मुद्दे पर आते हुए उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित निर्णय दिया:-

"अपनी विवेकाधीन शक्ति का प्रयोग करते समय न्यायालय को मामले की परिस्थितियों अपराध की प्रकृति और अपराधी के चरित्र पर विचार करना होता है। अपराध की प्रकृति पर विचार करते समय न्यायालय को अपराध की गंभीरता और पीड़ित पर उस अपराध के प्रभाव का यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। अपराधी परिवीक्षा अधिनियम की धारा 4 के तहत अभियुक्त को

अस्वीकरण:

अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

मिलने वाला लाभ अधिनियम के प्रावधानों में निहित सीमाओं के अधीन है, और इसमें प्रयुक्त शब्द “सकता है” स्पष्ट रूप से यह इंगित करता है कि यह विवेक न्यायालय के पास है कि वह अपराध की प्रकृति, अपराधी के चरित्र और मामले की समग्र परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, अधिनियम की धारा 3 या 4 के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए अपराधी को रिहा करे या नहीं। अपराधी परिवीक्षा अधिनियम की धारा 4 के अधीन शक्तियाँ न्यायालय को तब प्राप्त होती हैं, जब कोई व्यक्ति किसी ऐसे अपराध का दोषी पाया जाता है, जिसके लिए मृत्युदंड या आजीवन कारावास का दंड निर्धारित नहीं है। न्यायालय इन शक्तियों का प्रयोग किसी व्यक्ति को दोषी ठहराते समय कर सकता है, और यदि न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि मामले की परिस्थितियों जिसमें अपराध की प्रकृति और अपराधी का चरित्र भी शामिल है को ध्यान में रखते हुए अभियुक्त को यह लाभ दिया जाना चाहिए, तो न्यायालय इन शक्तियों का प्रयोग अपीलीय या पुनरीक्षण स्तर पर भी कर सकता है, और साथ ही भारत के संविधान के अनुच्छेद 136 के अंतर्गत अपील की सुनवाई करते समय यह न्यायालय भी इन शक्तियों का प्रयोग कर सकता है।”

अस्वीकरण:

अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

28. यह भी उल्लेखनीय है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **मोहम्मद हाशिम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (एआईआर 2017 एससी पृष्ठ 660)** के मामले में निम्नलिखित टिप्पणी की थी:

"20-.....रतन लाल बनाम पंजाब राज्य (एआईआर 1965 एससी 444) के मामले में न्यायमूर्ति सुब्बा राव ने बहुमत की ओर से निर्णय देते हुए यह राय व्यक्त की:-

यह अधिनियम दंडशास्त्र के क्षेत्र में सुधार की आधुनिक उदारवादी प्रवृत्ति की प्रगति में एक मील का पत्थर है। यह इस सिद्धांत की मान्यता का परिणाम है कि आपराधिक विधि का उद्देश्य अपराधी को दंडित करने के बजाय उसका सुधार करना अधिक है। मोटे तौर पर कहें तो यह अधिनियम 21 वर्ष से कम आयु के अपराधियों और उससे अधिक आयु के अपराधियों के बीच तथा मृत्युदंड या आजीवन कारावास से दंडनीय अपराध के दोषी अपराधियों और कम गंभीर अपराध के दोषी अपराधियों के बीच अंतर करता है। जहाँ 21 वर्ष से अधिक आयु के अपराधियों के मामले में न्यायालय को यह पूर्ण विवेकाधिकार दिया गया है कि वह अधिनियम के उपयुक्त प्रावधानों में निर्धारित शर्तों के अधीन रहते हुए उन्हें चेतावनी देकर या सदाचरण की परीक्षा पर रिहा कर दे, वहीं 21 वर्ष से कम आयु के अपराधियों के मामले में न्यायालय को यह

अस्वीकरण:

अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

निर्देश दिया गया है कि वह उन्हें कारावास का दंड न दे, जब तक कि वह इस बात से संतुष्ट न हो जाए कि मामले की परिस्थितियों जिसमें अपराध की प्रकृति और अपराधियों का चरित्र शामिल है को देखते हुए, अधिनियम की धारा 3 और 4 के तहत उनके साथ व्यवहार करना उचित नहीं है।

29. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने जगत पाल सिंह व अन्य बनाम हरियाणा राज्य एआईआर 2000 एससी 3622 के मामले में अभियुक्तों की धारा 323, 452 और 506 आईपीसी के तहत दोषसिद्धि को बरकरार रखते हुए भी उन्हें परिवीक्षा का लाभ प्रदान किया है, और अभियुक्तों को इस शर्त पर रिहा किया है कि वे मजिस्ट्रेट के समक्ष एक बंधपत्र निष्पादित करेंगे, जिसमें वे छह महीने की अवधि तक सदाचरण और शांति बनाए रखने का वचन देंगे।
30. यह बात ध्यान देने योग्य है कि यह घटना काफी पहले वर्ष 2004 में हुई थी। अभियुक्त-अपीलकर्तागण को पिछले 22 वर्षों से इस मामले में तकलीफ उठानी पड़ी है, और अपीलकर्तागण के विरुद्ध कोई भी आपराधिक इतिहास नहीं है जिस बात का राज्य की ओर से उपसंजात विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने भी खंडन नहीं किया है।
31. मामले के उपरोक्त तथ्यों साक्ष्यों और परिस्थितियों और इस मुद्दे पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि को ध्यान में रखते हुए साथ ही इस मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए अवर न्यायालय द्वारा दिए गए निष्कर्ष में कोई

अस्वीकरण:

अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

भी विकृति नजर नहीं आती है, इसलिए इस निष्कर्ष में कोई बदलाव नहीं किया जाएगा। इसके अतिरिक्त मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए कि कथित घटना वर्ष 2004 में हुई थी, और अभियुक्त-अपीलकर्ता पिछले 22 वर्षों से इस मामले में कष्ट भोग रहे हैं, तथा अभियुक्त-अपीलकर्ताओं का कोई भी आपराधिक इतिहास (पूर्ववृत्त) प्रस्तुत नहीं किया गया है, जिसका राज्य की ओर से उपसंजात विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने भी खंडन नहीं किया है—अतः धारा 323 भारतीय दण्ड संहिता के तहत दोषसिद्धि के समर्थन में अवर न्यायालय द्वारा दिए गए निष्कर्षों को बरकरार रखा जाता है, परन्तु दंडादेश में संशोधन किया जाता है।

32. अपीलकर्तागण को जेल भेजने के बजाय उन्हें तत्काल अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 की धारा 4 का लाभ दिया जाता है। उन्हें निर्देश दिया जाता है कि वे संबंधित जिला परिवीक्षा अधिकारी के समक्ष अपने बंधपत्र के साथ-साथ प्रत्येक 20,000/- रुपये की दो जमानतें प्रस्तुत करें, साथ ही वे इस आशय का एक वचनपत्र भी प्रस्तुत करें कि वे आज से एक वर्ष की अवधि के दौरान शांति और सदाचरण बनाए रखेंगे। उक्त बंधपत्र अपीलकर्तागण द्वारा इस निर्णय की तिथि से दो माह की अवधि के भीतर प्रस्तुत किए जाने हैं।
33. उपर्युक्त शर्तों में से किसी का भी उल्लंघन होने की स्थिति में अपीलकर्तागण को हिरासत में ले लिया जाएगा और उन्हें दिया गया दण्डादेश भुगतना होगा।
34. उपर्युक्त संशोधन के साथ प्रस्तुत आपराधिक अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है।

अस्वीकरण:

अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



35. आदेश की एक प्रमाणित प्रति संबंधित न्यायालय को भी अनुपालन हेतु भेजी जाए।
36. कार्यालय को निर्देश दिया जाता है कि वह आवश्यक अनुपालन हेतु इस आदेश को संबंधित न्यायालय को सूचित करे।
37. अवर न्यायालय का अभिलेख यदि कोई हो तो उसे भी संबंधित जिला न्यायालय को वापस भेज दिया जाएगा।

(न्यायमूर्ति प्रमोद कुमार श्रीवास्तव)

18 मार्च, 2026

केकेवी/-

अस्वीकरण:

अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।